

संस्कृत रंगमंच : परम्परा तथा सम्भावनाएँ

सारांश

आधुनिक रंगमंचीय शैली में एक प्रकार मूकाभिनय (Mime) का है, इस शैली का एक विलग रूप संस्कृत नाट्य परंपरा में शास्त्रीय एवं कलात्मक रूप में विद्यमान है, इसका अध्ययन नाट्यशास्त्र के विभिन्न अध्यायों में प्रतिपादित तथ्यों का अवलोकन कर किया गया है। इसके साथ ही उक्त तथ्य किस प्रकार से मानवीय संवेगों को रंगमंचीय कार्यव्यापार के माध्यम से प्रतिपादित करते हैं, का अध्ययन किया गया है। उक्त तथ्यों का अवलोकन नाट्यशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं कलाओं के अन्तरसंबंध को स्थापित करता है एवं वर्तमान में भी इस शैली के महत्व एवं आवश्यकता को स्थापित करता है।

संस्कृत नाट्य परंपरा में चित्राभिनय, सामान्याभिनय, शारीराभिनय के माध्यम से उन दिशा निर्देशों को प्रतिपादित किया गया है, जो मंच पर अभिनेता द्वारा शरीर के अंग एवं उपांगों के माध्यम से भाव एवं रस से युक्त अभिनय को प्रयोग में व्यक्त करने हेतु समावेश किया जाता है। उक्त अभिनय संवादहीन (शब्द ध्वनि का न होना) होते हुये भी गूढ़ रहस्यों को उदाघाटित करने बावत् अभिनेता के अभिनय एवं कार्यव्यापार का भ्रम उत्पन्न कर उदाघाटित होता है। यहां पर संवाद हैं पर संकेतों में, प्रतीकों में, भावों में जो भारतीय संस्कृत रंगमंच की उत्कृष्ट अभिनय शैली को स्थापित करता है, इससे यह भी प्रमाणित होता है कि विष्व रंगमंच के इतिहास में अनेक देशों की रंगमंचीय शैलियों में मूकाभिनय का प्रयोग विगत 300 वर्षों से देखने को मिलता है, परंतु भारतीय शास्त्रीय रंगमंच की उक्त शैली अपने कलात्मकता एवं उत्कृष्टता के कारण अपने में निहित मौलिक तत्वों का मूल्यांकन एवं अवगाहन विषय कि उपादेयता हेतु कलामर्मज्ञों के लिए आवश्यक है। भारतीय संस्कृत नाट्य परंपरा वैदिक परंपरा से जुड़ी है एवं भरतमुनि कृत "नाट्यशास्त्र" का रचनाकाल लगभग ई. पूर्व चौथी शताब्दी से ई. चौथी शताब्दी का माना जाता है, अतएव यह स्वतः ही सिद्ध होता है कि मूकाभिनय की विभिन्न शैलियां संस्कृत नाट्य परंपरा के मूकाभिनय का अनुकरण ही है, जो शास्त्रीय न होकर मात्र लोकानुकरण है।



राकेश सोनी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
ललित कला एवं प्रदर्शनकारी
कला विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, मध्य प्रदेश

मुख्य शब्द : शोधपर्यक – साहित्य से साहित्य। प्रयोगिक – प्रयोग से नवीनतम प्रयोग एवं साहित्य से नवीनतम प्रयोग के प्रयास। संस्कृत नाट्य साहित्य एवं प्रयोग का मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक तथ्यों के आधार पर अवलोकन।

प्रस्तावना

"नाट्यशास्त्र" में रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान, रंग इत्यादि पर विस्तृत वर्णन/निर्देशन मिलता है। नाट्यशास्त्र या उसके बाद जो भी नाट्य साहित्य उपलब्ध हैं वे इसी उद्देश्य से रचे गये हैं कि नाट्य प्रयोग में नाट्याचार्यों द्वारा प्रतिपादित दिशा निर्देशों का पालन हो।

वर्तमान में किसी भी शैली के नाट्य हेतु-संस्कृत नाट्य परंपरा की शैली या उसके दिशा निर्देश अभिनेता या रंगकर्म से जुड़े प्रयोजन को प्रशिक्षित करने हेतु एक पूरी की पूरी जीवंत कार्यशाला है। परिवेश के स्वाभाविक परिवर्तन के कारण प्रस्तुतियों में भी परिवर्तन हुए हैं। तब हमें भारतीय प्राचीन नाट्य परंपरा को भी नये परिवेश में समझने की कोशिश करनी होगी। संस्कृत नाट्य साहित्य के मूल में वर्तमान रंगमंच का या उसके परिप्रेक्ष्य में अनेक तथ्य पूर्णतः विद्यमान हैं।

संस्कृत नाट्य परम्परा के आंगिक/चित्राभिनय/सामान्य अभिनय/शारीराभिनय एवं अन्य तथ्य जो इनसे परोक्ष – अपरोक्ष रूप से जुड़े हैं, मूकाभिनय की प्राचीन परम्परा को स्थापित करते हैं।

तात्पर्य यह है कि संस्कृत नाट्य परम्परा में विद्यमान मूकाभिनय को एक नये प्रयोग के तौर पर स्वतंत्र रूप में स्थापित किया जा सकता है। संस्कृत नाटकों का सीधा-सीधा मूकाभिनय रूप में रूपान्तरण किया जा सकता है।

"नाट्यशास्त्र" के 26वें अध्याय में चित्राभिनय का उल्लेख मिलता है। "अंगादि से होने वाले जिस अभिनय का यदि सामान्य परिपाटी से लक्षण नहीं दिया जा सका है तब उसे चित्राभिनय समझिये।" रसात्मक पदार्थों का सामान्य

भावभूमि पर किया जाने वाला प्रस्तुतिकरण सामान्याभिनय तथा लोक परिवाटी में प्रसिद्ध आंगिक अभिनय का विशेष तथा पदार्थों को प्रस्तुत करते हुए किया जाने वाला अभिनय चित्राभिनय है।¹

चित्राभिनय के अध्याय में ऋतुएँ, बादल दिशाएँ, नवग्रह, नक्षत्र, भूमि, चाँदनी, सुख, वायु, रस, सुगन्ध, सूर्य, अग्नि, धूल, धुँआ, ताप, उष्मा, सूर्यास्त, सूर्योदय, हार, माला, श्रुत्य-दृश्य पदार्थ, विद्युत्, आग, लू, गर्मी, अस्पृश्य, वर्षा, जुगन, भँवरा, पशु, गुरु वन्दना, संख्या, छत्र, ध्वज, स्मरण, ध्यान, अतीत, घास, मरण स्वप्न, अंधेरा, गृह, गुहा, झूला, सागर, देवता, पुरुष, मित्र, मोर, सारस, हंस, भूत-पिशाच, तोता, मैना, स्त्रियों की विभिन्न दशाएँ मद, विषाद, आदि का उल्लेख मिलता है।

नाट्यशास्त्र के अध्याय

20 में दशरूपक निरूपणाध्याय: के अन्तर्गत निर्देशित किया गया है कि

न त्वरणं गतिविचारैः।²

रंगमंच पर रथ, हाथी, घोड़ा, महल, का प्रवेश नहीं होना चाहिए बल्कि इन सबकी आकृति को शारीरिक चेष्टाओं और चाल या हलचलों की हू-ब-हू नकल किसी पात्र से करवाना चाहिए।

यदि कारणो पपन्नं षडभिश्चतुर्भिर्ता।³

सेना आदि को दिखाना आवश्यक ही है तो पांच छः व्यक्तियों का मंच पर प्रवेश बार-बार करा दिया जाये। इसी प्रकार लास्य के बारह अंगों में से नायिका द्वारा - गेयपद, आसीन, सैन्धव, विचित्र पद, भविति में मूकाभिनय की प्रमुखता देखने को मिलती है।⁴

नाट्यशास्त्र

21 वां अध्याय "सन्धांग निरूपणाध्याय" है। नाटक में पांच संधियां मानी गयी हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण। प्रतिमुख संधि के तेरह अंग बताये गये हैं जिसमें परिसर्प एवं तापन प्रकार में मूकाभिनय देखने को मिलता है।

परिसर्प

दृष्ट नष्टानुसरणं वर्ण्यते।⁵

एक बार देखी लुप्तप्राय अभीष्ट वस्तु का अन्वेषण करना परिसर्प कहलाता है।

तापन

अपायदर्शनं तद्भवेत्।⁶

किसी अनिष्ट का सोचना या उसका दिखाई देना तापन कहलाता है।

गर्भसन्धि के भी तेरह अंग हैं जिसमें "अनुमान" अंग में मूकाभिनय होता है।

रूपानुरूप स्मृतम्।⁷

किसी वस्तु के नाम प्रत्यक्ष सुनकर या उपलब्ध कर उसके स्वरूप की समानता आदि चिन्हों के द्वारा कल्पना कर लेना "अनुमान" कहलाता है।

अवमर्श सन्धि के 13 अंगों में से "खेद छांदन" अंग में मूकाभिनय के तत्व हैं।

खेद

"मनश्चेष्टा उदाहलः।"⁸

मानसिक या शारीरिक व्यापार से उत्पन्न श्रम या थकावट को "खेद" निरूपित किया गया है।

छादन

कार्यार्थ भवेत्।⁹

किसी कार्य या प्रयोजन वश अपमान पूर्ण शब्दों को सहन कर लेना "छादन" है।

यस्मात् स्वभावं नाटकं स्मृतम्।¹⁰

अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत और प्रतीत करवाई जाने एवं अपने अंगों तथा उपांगों के अभिनय तथा गति आदि को क्रमशः प्रस्तुत करते हुये प्रदर्शित करते हैं अतएव यह सारी वस्तु नाटक है।

सर्वभावैः प्रयोक्तृभिः।¹¹

सभी भाव, सभी रस, सभी कार्य, सभी क्रियाएँ, शिल्पों का प्रयोग नाट्य में होना चाहिए। अन्य कलाओं का जो मानव द्वारा सदा नये अनन्त रूप में निर्मित की जाती हैं।

नाट्यशास्त्र में आहार्य अभिनय के अन्तर्गत प्राणि समुदाय भी शामिल है देव, दानव गंधर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प को रखा गया है।

देव दानव येऽपरे।¹²

प्रक्षिप्त

इसमें स्त्री वंश धारिणी नदी, पर्वत, समुद्र, वाहन, अनेक शस्त्र भी प्राणि वर्ग में रखे गये हैं।

स्त्री

भावाः प्राणि संज्ञया।

अजीव (जड़) - पर्वत महल, यन्त्र, ढाल, ध्वज आदि को अजीव माना गया है।

शैल प्रसाद इतिस्मृताः।¹³

नाट्य शास्त्र के 24 वें अध्याय के सामान्य अभिनय में वाणी, अंग तथा सत्व पर निर्भर रहने वाले या इससे उत्पन्न होने वाले अभिनय को सामान्याभिनय बतलाया गया है।

हाव

भाव की उस अवस्था को जो चित्त वृत्तियों से उद्भूत होकर नेत्र, भौहें, ग्रीवा करेचक आदि आंगिक चेष्टाओं द्वारा श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति हाव है।¹⁴

हेला

पात्रों का जो हाव श्रृंगार रस के आश्रित होकर ललित शारीरिक चेष्टाओं का अभिव्यंजक है।¹⁵

शिरोवदन सामान्यभिनस्तु सः।¹⁶

मस्तक चेहरा, पैर, उरु, जंघा, उदर तथा कटि के द्वारा एक साथ निर्माण होकर भावाभिनय प्रस्तुत किया जावे उसे सामान्याभिनय समझना चाहिये।

ललितै रसभावसमन्वितैः।।¹⁷

सामान्य अभिनय

रस तथा भावों से युक्त ललित हस्त संचारों तथा सुकुमार आंगिक चेष्टाओं द्वारा प्रदर्शित करना चाहिए।

स्त्रियों के स्वभावज अलंकार में विलास, किलकिन्चित, मोड़ायित, कुट्टमित, बिबोक, ललित, बिहुत¹⁷ में परिस्थिति के अनुरूप गहरे अर्थों को व्यक्त करने वाला मूकाभिनय होता है। इन सभी अलंकारों कार्य व्यापार में मूकाभिनय की प्रधानता है।

नाट्य शास्त्र में शारीराभिनय छः प्रकार का बतलाया गया है - वाक्य, सूचा, अंकुर, शाखा नाट्यायित तथा निवृत्यकर।

सूचा

जिस वाक्य को या उसके अर्थ का पहले सात्विक तथा शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अभिव्यक्त कर चुकने पर पुनः शब्दों से उसी बात को कहना सूचाभिनय है।

वाक्यार्थ सा तु।¹⁸

अंकुर हृदयस्थो विज्ञेयस्त्वकुराभिनयः।¹⁹

शाखा यत्तु स विज्ञेयः।²⁰

मस्तक, मुख, जंघा, पिडलियां, हाथ, पैरों के द्वारा किया जाने वाला अभिनय शाखा के अनुसार (सौष्टव पूर्वक) क्रमानुसार प्रस्तुत किया जावे उसे शाखाभिनय समझना चाहिये।

निवृत्यंकर – यत्रान्योक्तं सोऽथ।²¹

किसी अन्य पात्र के कहे हुये वचनों को कोई अन्य पात्र "सूचनाभिनय" के द्वारा अभिनीत करते हुए उससे सम्बन्ध अर्थ वाली घटना को कहते हुए सा प्रदर्शित करे तो उसे निवृत्यंकर कहा जाता है।

इन्द्रियाभिनय में इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, गंध आदि विषयों का उचित आंगिक, चेष्टाओं के माध्यम से वृत्त करने के निर्देश हैं – शब्द स्पर्शन्ध भावैरभिनयेदुधः।²²

नाट्य शास्त्र में अनुरागवस्था वेश्या, कुलजा स्त्री, अनुरागवस्था, अभिलाषा, चिन्ता, अनुस्मृति आदि में अभिनय विनियोग में मूकाभिनय उत्कृष्ट शैली का है।²³

नाट्य शास्त्र के 24 वें अध्याय में निषेध कार्य का वर्णन है

नाम्बरग्रहणं केश संयम मनन्तधा।²⁴

अभिनय के दौरान वस्त्र धारण, स्नान, चन्दन लेपन, अंजन, अंगराग, अधरराग, केशों को बाँधना आदि को रंगमंच पर दिखलाना निषेध माना गया है। इस सभी का अभिनय अंग – उपांगों के माध्यम से शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से अभिनय कराना मूकाभिनय है।

नाट्य शास्त्र के 9 वें अध्याय में हस्ताभिनय के अन्तर्गत संयुतहस्त, असंयुतहस्त, नृत्तहस्त के अतिरिक्त उदर, कटि, पादाभिनय आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। नाट्य शास्त्र में असंयुतहस्त 24 प्रकार के, भरतार्णवः में 27 प्रकार के, अभिनय दर्पण में 28 प्रकार के नृत्यध्याय में 24 प्रकार के बतलाये गये हैं। इसी प्रकार संयुतहस्त नाट्य शास्त्र में 13 प्रकार के, भरतार्णवः में 16 प्रकार के अभिनय दर्पण में 23 प्रकार के नृत्याध्याय में 13 प्रकार के बतलाये गये हैं। इस सभी का विनियोग मूकाभिनय हेतु महत्वपूर्ण है।

नाट्य शास्त्र के 10वें अध्याय में चारी, करण, मंडल, स्थानक का निरूपण किया गया है जो पूर्णतः शारीरिक चेष्टाएँ हैं।

चारीभिः प्रसृतं संप्रवर्तते।²⁵

अर्थात् नाट्य की स्थिति चारी से ही होती है। चारी के बिना कोई अंग प्रवृत्त नहीं होता। चारी द्वारा ही नृत्त और अंगहार की रचना होती है। चारी के द्वारा ही शस्त्र मोक्षण होता है। चारी का प्रयोग युद्ध में होता है। अभिनय की सभी चेष्टाएँ चारी से ही निष्पन्न होती हैं।

धनुर्वज्रासिशस्त्राणां विभूषितम्।²⁶

अर्थात् रंगमंच पर युद्ध में भेदन, छेदन, रक्त-पात, स्पष्ट आघात नहीं होना चाहिए, वरन् इसको संज्ञामान इशारों से ही करना चाहिए, शस्त्रों का मोक्षण अभिनय मात्र से ही करना चाहिए। इस प्रकार शारीरिक चेष्टाएँ ऐसी हो कि दर्शक को लगे कि अभिनेता युद्ध कर रहे है। शस्त्रों को एक-दूसरों पर चला रहे हैं।

नाट्य शास्त्र के 11वें अध्याय में "मंडलविधान" में 10 आकाश मंडल एवं 10 भूमिगत मंडल बताये गये हैं। ये मंडल चारियों के सहयोग से ही निर्मित होते हैं। इन मंडलों का युद्ध, बाहुयुद्ध तथा परिक्रमा में उपयोग बतलाया गया है। अर्थात् शारीरिक कार्य व्यापार द्वारा युद्ध मंच पर भ्रमण आदि में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।²⁷

मनोविज्ञान (Human Psychology)

मन और शरीर, अनुपलब्धि, सम्भव, विपर्यय या भ्रम (Illusion), चिन्ह और संकेत, स्मृति, अनुकरण, कल्पना, मानसविम्ब, कल्पनाविम्ब, एकात्मकता (ऐक्यपथी या आइन्प्यहलुंग)

अभिव्यक्ति, कार्यवाद (Functionalism), व्यवहारवाद (Behariourism), अवलोकन, संवेदन अनुभव, अवधान (Attention), प्रतिक्रियायें, समीपता का नियम इत्यादि तथ्य हमेशा से ही मानवीय क्रिया प्रतिक्रियाओं से जुड़े रहते हैं या इनका प्रभाव प्रत्येक कार्य को प्रभावित करता है।

रोम के चौथी शताब्दी ई. तक मूक प्रहसन खेले जाने लगे थे जिनमें जीवन के वास्तविक दृश्य होते थे।²⁸ मैगोदी, लिसियोदी, हिलारोदी, सिमादी यूनान में दृश्यात्मक नाटक के लिए जाने जाते हैं।²⁹ मूकसंवाद नाट्य, नेपथ्यवाक का उल्लेख भी मिलता है। स्पेन में संगीत नाट्य "जार जुएला" भी मूक नाटक को प्रदर्शित करता है। मध्यकाल में योरोप में मूकनाट्य बैले, बाले, या बल्ला-प्रचलित हुये।

नृत्याध्याय, भरतार्णवः एवं अन्य संस्कृत नाट्य साहित्य जैसे – भास, कालिदास, शूद्रक की कृतियों से लेकर वर्तमान काल तक की नाट्य कृतियों में अनेक जगहों पर मूक अभिनय का कार्य व्यापार प्रमुख रूप से मिलता है।

राधावल्लभ त्रिपाठी जी द्वारा नाट्य शास्त्र विश्वकोष भाग-2 में पृष्ठ 301 से 378 तक अंगिक अभिनय की विस्तृत व्याख्या की गई है साथ ही उसमें हस्त मुद्राओं को चित्रों के माध्यम से दिखलाया गया है। यह पूरी की पूरी व्याख्या भारतीय शास्त्रीय शैली में संस्कृत नाट्य का मूकाभिनय है।³⁰

अभिव्यंजनावादी निदेशकों द्वारा मनोवृत्तियों के प्रकटीकरण के लिए विभिन्न रंगों तथा मुखौटों का प्रयोग आहार्य अभिनय में बतायी पद्धति से साम्य रखता है। बोध कराने वाली क्रिया को चिन्ह की संकेत क्रिया कहा गया है। संकेत हमारी जिंदगी में भाषा का रूप ग्रहण कर लेते हैं और जीवन में अनेक कार्य इनके माध्यम से ही पलते हैं। मॉरिश के अनुसार मन के भीतर सोचना, मन ही मन बातें करना, अपने से बातें करना यह सब भाषा का उपयोग नहीं है। भाषा के संकेतों का उपयोग है।³¹

ग्रांट के अनुसार भाषा वास्तव में भाषा तब होती है जब वह किसी को सुनाने के लिए दूसरे के कान तक

पहुंचने के लिए बोली जाती है। मनुष्य हमेशा प्रतीकों में सोचता है और यह मनुष्य की बुद्धि की विशेषता है।³² ऑगडेन एवं रिचर्डस ने संकेतों, इशारों को प्रतीक कहा है।³³

“होमर के अनुसार अवास्तविक की वास्तविक के समान प्रतीति ही कलात्मक भ्रम या चमत्कार है जिससे आनंद की प्राप्ति होती है।³⁴ जेनोफन की कृति मेमोरेबिलिया में बताया है कि – कलाकृति में सम्भव है जो अपार्थिव और अदर्शनीय हैं।³⁵ होरेस ने इस बात पर जोर दिया है कि – “जीवन की सहज भाषा ग्रहण करें, दर्शक अपने विश्वासी नेत्रों के सम्मुख जो कुछ पाता है उसके मन पर जितना सजीव प्रभाव पड़ता है उतना कानों से सुनी हुई बात पर नहीं।³⁶”

“प्रकृति के साथ भावों का तादात्म्य हो जाने पर परिणाम स्वरूप हमारे सूक्ष्म भावों को भव्य और मूर्त रूप मिल जाते हैं। जिनके आधार पर उनका साधारणीकरण आसानी से हो जाता है। हम उन्हीं रूपों को प्रतीक के रूप में ग्रहण करते हैं और प्रायः अपने अमूर्त भावों को मूर्त दे उन्हीं के द्वारा बोधगम्य और सरल बना लेते हैं।³⁷”

जहाँ वाक्य का उच्चारण नहीं होता वहाँ चेष्टा अर्थात् इशारे से बोध होता है। इशारे से या लिपि से वाचक शब्दों का स्मरण होता है। उससे शब्दबोध भी जो जाता है।³⁸ “उत्तेजना उसे कहते हैं जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करे और प्रतिक्रिया वह है जो उत्तेजना के द्वारा उत्पन्न की जाती है। प्रतिक्रिया शरीर की चेष्टा का नाम है वह केवल निष्क्रिय गति नहीं है।³⁹”

मूकाभिनय में वाचिक न होने का मतलब यह कतई नहीं है कि इस माध्यम में बोधगम्यता का अवरोध हो। वाचिक के अर्थों को किसी न किसी प्रकार से उद्घाटित तो किया ही जाता है।

दृश्यात्मक बिम्ब में प्रत्यक्ष में देखी गयी वस्तु के आधार पर बिम्ब बनते हैं। एकात्मता उस कल्पनात्मक अभाव की व्याख्या करने का प्रयास करती है जिसमें हम किसी वस्तु में बिना इच्छा के अपने आप को प्रविष्ट कर देते हैं। “अर्थात् ऐम्पेथी किसी भी कल्पना के प्रति वह प्रतिक्रिया है जो रूपों, शरीरों और गतियों से उत्पन्न होती है। हरमान लोत्सने के अनुसार – कोई भी ऐसा दृश्य रूप नहीं जिसमें हमारी कल्पना हमें उसमें नहीं पहुँचा देती।”

वैदिक साहित्य में वाक् या वाणी के दो भेद किए गये हैं निरुक्ता और अनिरुक्ता। जो प्रकट सुनाई पड़े और व्यक्त हो वह निरुक्ता है और जो अप्रकट और अव्यक्त हो वह अनिरुक्ता है। किसी वाणी या प्रवचन का प्रमुख पक्ष मौन है इस मौन का प्रयोग नाटक की शुरुआत में किया जा सकता है। मौन से आने वाले दृश्य संकेत को बताया जा सकता है। मौन से किसी विशेष क्षण में सम्वाद के बदले केवल मुखाकृति और चेष्टाओं से ही अर्थ व्यक्त करवाया जा सकता है।⁴⁰

कार्यवाद में प्राणी की मानसिक या शारीरिक क्रियाओं के पीछे कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। प्राणी अपने सारे कार्य किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए ही करता है।⁴¹

व्यवहारवाद को वाटसन के अनुसार हम मनुष्य के मन को न देखकर उसके व्यवहार को ही देख पाते हैं। व्यवहार परिवेश के प्रति प्राणी की सारी शारीरिक क्रिया

होती है व्यवहार प्राणी के अर्थपूर्ण अनुभव को प्रदर्शित करता है। मनुष्यों की अपनी शैलियां होती हैं। वे शैलियां परिवेश में अपनी ही विचित्र प्रतिक्रियाओं से निर्धारित होती हैं।⁴²

मूकाभिनय साहित्य एवं प्रयोगों में पूरी तरह विद्यमान है एवं उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता भी है। संस्कृत नाट्य परम्परा में मूकाभिनय विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रमुख एवं संवेगों की भाषा बन पड़ा है। इसके पृथक नवीन प्रयोग आवश्यक हैं। जो कला की अपनी प्रकृति या स्वभाव की आवश्यकता को भी पूरा करेगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी चमत्कृत उपयोगिता होगी। जिस तरह कथकली, भरतनाट्यम, कथक जैसे भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में नाट्यशास्त्रीय दिशा निर्देशों का परिपालन देखने को मिलता है। एवं अपने ठोस आधारों के कारण जन मानस में स्थापित हो चुके हैं। संस्कृत नाट्य परम्परा परम्परागत शैलियों के साथ ही नये आयामों के माध्यम से अपनी कलात्मक सौन्दर्य के साथ हमारे मध्य स्थापित हो सकेगें, प्राचीन मूर्ति कला इसका दृष्टव्य उदाहरण है। सौन्दर्य के मौलिक तत्व कभी समाप्त नहीं होते और फूहड़ता कभी टिकती नहीं। जरूरत है नाट्यशास्त्रीय परम्परा की शास्त्रीय शैली को मूकाभिनय के माध्यम से विभिन्न कथानकों की नाट्य प्रस्तुति एवं इसी तारतम्य में शोध पर्यक साहित्यिक शोध कार्य को करने की।

उद्देश्य

भारतीय अभिनय शैली को मात्र लोक, क्षेत्रीय, या भाषा के मापदण्डों पर तय किया जाना या आयातित अनेक शैलियों के आधार पर तय किया जाना या फिर यथार्थवाद, स्वभाववाद, असंगत इत्यादि के मापदण्डों से निर्धारित करना उचित प्रतीत नहीं होता, उक्त तमाम प्रकार के तथ्य हमारी संस्कृत नाट्य परंपरा में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं एवं वैदिक काल से ही नाट्य परंपरा की एक समृद्ध परंपरा रही है। इसी तारतम्य में एक शैली जिसे वर्तमान में मूकाभिनय (Mime) कहा जाता है, के अनेक प्रकार देखने को मिलते हैं, उक्त शैली भारतीय नाट्य परंपरा में किस रूप में विद्यमान रही है, इस हेतु संस्कृत नाट्य परंपरा का मुख्य शास्त्र “नाट्य शास्त्र” में निर्दिष्ट दिशा निर्देशों का अध्ययन इस तथ्य को पुष्ट करता है कि मूकाभिनय प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा की प्रमुख अभिनय शैली रही है।

निष्कर्ष

भारतीय रंगमंच प्रमाणिक रूप से प्रादुर्भाव काल से ही संस्कृत रंगमंच से जुड़ा है, इसके बावजूद संस्कृत रंगमंच की समृद्धशाली परंपरा का हास होना भारतीय रंगमंच के इतिहास की बड़ी घटना है। संस्कृत नाट्य परंपरा के विभिन्न आयाम आज भी अनेक कलाओं में विद्यमान हैं, नाट्यशास्त्र में उल्लेखित अभिनयों के विवरणों में चित्राभिनय, सामान्यभिनय, चारी, करण, भाव, रस, हेला इत्यादि आधुनिक रंगमंच के मूल आधार हैं। आधुनिक रंगमंच की एक शैली मूकाभिनय का किस तरह से नाट्यशास्त्र से संबंध स्थापित है, की विवेचना ही विषयवस्तु है।

नाट्यशास्त्रीय कलाओं का अध्ययन, संवर्धन एवं प्रयोग आधुनिक रंगमंच के लिए महत्वपूर्ण है। कलाओं

की एक-दूसरे से तारतम्यता एवं अन्तरसंबंध को इसमें उल्लेखित तथ्य स्थापित करते हैं, इसके साथ ही मनोवैज्ञानिक तथ्यों का कलाओं के माध्यम से व्यक्त होने की पुष्टि करते हैं ।

विषय के अवगाहन में नाट्यशास्त्रीय परंपरा में मानवीय वृत्ति-प्रवृत्तियों को व्यक्त करने हेतु श्रव्य-दृश्य के माध्यम से ही नहीं वरन् सहृदय दर्शक के मस्तक पटल पर समूचे वृत्त की अनुभूति मात्र दृश्य विधान के माध्यम से भी पूर्ति करता है, जिसमें भाव, रस, संवेगों का समावेश शरीर के प्रत्येक अंग-उपांगों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, कलाकार के इस कार्यव्यापार को ही आधुनिक रंगमंच में मूकाभिनय (Mime) कहा जाता है । यही कार्यव्यापार भारतीय शास्त्रीय नाट्य परंपरा के मूल आधारों में से एक है, जो आज भी भारतीय शास्त्रीय नृत्यों एवं ललित कलाओं में विद्यमान है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, नाट्य शास्त्र, तृतीय भाग, चौखम्बा, संस्कृत संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण, वि.सं. 2040, पृ. 284
2. ना.शा. 20:42
3. ना.शा. 20:44
4. ना.शा. 20:138-149
5. ना.शा. 21:76-77
6. ना.शा. 21:77-78
7. ना.शा. 21:86
8. ना.शा. 21:93-94
9. ना.शा. 21:95-96
10. ना.शा. 21:123
11. ना.शा. 21:124-125
12. ना.शा. 23:88
13. ना.शा. 23:89
14. ना.शा. 24:10
15. ना.शा. 24:11
16. ना.शा. 24:72
17. ना.शा. 24:15-23
18. ना.शा. 24:43
19. ना.शा. 24:49

20. ना.शा. 24:45
21. ना.शा. 24:48
22. ना.शा. 24:80
23. ना.शा. 24:163-175
24. ना.शा. 24:240
25. ना.शा. 10:5-6
26. ना.शा. 10:86-88
27. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, "नाट्यम" नवम्बर, 1988, नाट्य परिषद, संस्कृत विभाग, विश्वविद्यालय सागर
28. पं. सीताराम चतुर्वेदी, "समीक्षा शास्त्र", अखिल भारतीय परिषद, काशी, संवत् 2010, पृ. 917
29. वही, पृ. 917
30. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, "नाट्यशास्त्र विश्वकोष" भाग-2, प्रथम संस्करण, 1999, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 301-378
31. परिपूर्णानंद वर्मा, "प्रतीकशास्त्र, हिन्दी समिति, सूचना विभाग उ.प्र., लखनऊ, 1964, पृ. 14
32. डॉ. पद्मा अग्रवाल, "ए साइक्लोजीकल स्टडी इन सिम्बोलिज्म," मनोविज्ञान प्रकाशन, वाराणसी, 1955, पृ. 53
33. परिपूर्णानंद वर्मा, "प्रतीकशास्त्र, पूर्वोक्त, पृ. 107
34. डॉ. जगदीश प्रसाद मिश्रा, "पाश्चात्य साहित्य शास्त्र", साहित्य प्रकाशन दिल्ली, पृ. 19
35. वही, पृ. 35-36
36. वही, पृ. 149
37. डॉ. चन्द्रकला, "प्रतीक तथा प्रतीकवाद", मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1965, पृ. 15
38. पं. आनन्द झा, "पदार्थ शास्त्र", हिन्दी समिति, सूचना विभाग लखनऊ, 1965, पृ. 118
39. वुडवर्थ और मार्विक्स, अनुवादक-उमापति चन्देल, दि अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, 1956, पृ. 124
40. पं. सीताराम चतुर्वेदी, "समीक्षाशास्त्र", पूर्वोक्त, पृ. 853
41. मधुकर, "मनोविज्ञान : प्रकृत और अप्रकृत" सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1937, पृ. 5
42. वही, पृ. 11